International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 3; Issue 4; April 2016; Page No. 361-368

सर्वधर्म एक चिंतन

डॉ. माधवी शर्मा

प्राचार्य, डी. बी. (पी. जी.) महाविद्यालय, खेरली (अलवर)

धियते लोकोऽनेन धरति लोकं वा अर्थात् जो लोक को धारण करता है वह धर्म है। जितने भी ऐतिहासिक धर्म हैं, उनकी अपनी मान्यताऐं होती हैं, अपना दर्शन होता है अपने को स्थापित करने के आधार होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक धर्म में विचार, भाव और इच्छा के समावेश पर बल दिया जाता है।

''यतोऽभ्युदयानि श्रेयः सिद्धिः स धर्मः।''

धर्म वह अनुशासित जीवन क्रम है, जिसमें लौकिक उन्नति तथा आध्यात्मिक परम गति दोनों की प्राप्ति होती है। जैन धर्मशास्त्र में लिखा है–

दुर्गतिप्रसृतान् जीवान् यस्माद् धारयते ततः।
धत्ते चैतान् शुभस्थाने तस्माद् धर्म इति स्थितः।।

धर्म इस कारण धर्म कहलाता है कि वह दुर्गति की ओर बढ़ते हुए जीवों को धारण कर लेता है तथा उन्हें शुभ स्थिति में स्थापित कर देता है। धर्म के तीन अंग हैं– (1) ज्ञान (2) कर्म (3) उपासना। जैसे मानव शरीर को भोजन की आवश्यकता है और मस्तिष्क को ज्ञान की वैसे ही आत्मा को धर्म की जरूरत होती है। धर्म के बिना आत्मा मृतप्राय है। धर्महीन मनुष्य का जीवन वैसा ही उद्देश्यहीन है जैसे कि दिग्दर्शक यन्त्र के बिना जहाज।
धर्मशास्त्र में कहा है–

विद्या रूपं धनं शौर्यं कुलीनत्वमरोगता।
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षश्च सर्वं धर्मादवात्यते।।

विद्या, रूप, धन, वीरता, कुलीनता, नीरोगता, राज्य, स्वर्ग तथा मोक्ष सभी की प्राप्ति धर्म से होती है।

हिन्दु धर्म :–
हिन्दु धर्म सबसे प्राचीन धर्म है। अन्य सभी धर्मों का उद्गम स्थल हिन्दु धर्म ही है। हिन्दु धर्म का जनक कोई व्यक्ति विशेष नहीं है। इसलिए हिन्दु धर्म व्यक्तिवादी नहीं है। हिन्दु धर्म एक जीवन शैली तथा एक धार्मिक चक्र को वर्णित करता है। इस विषय में जेहनर ने लिखा है & " Hinduism is in fact, both a way of life and a highly organized social and religious system". हिन्दु धर्म उदारवादी है। इसमें विचारों एवं विश्वासों,भावनाओं व क्रियाओं का उल्लेख हुआ है। इसे 'सनातन धर्म' की संज्ञा भी दी जाती है। क्योंकि '' जिस धर्म का दूसरे धर्मों के साथ कोई विरोध न हो। जो समस्त मानवता के अभ्युदय तथा कल्याण में समान रूप से सहायक हो वह ''सनातन धर्म ''।
हिन्दु धर्म का आधार कोई विशेष ग्रन्थ नहीं है। इसका आधार वेद उनपिषद, वेदांग, गीता, स्मृति पुराण आदि है। वेद हिन्दु जाति का सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है। वेदों में ऋषियों की वाणी जो मन्त्रों में निबद्ध है। जिसमें हिन्दु धर्म की मान्यताऐं, मूल्य आदर्श तथा सिद्धान्तों का उल्लेख है। हिन्दु धर्म के अनुसार वेद अपौरूषेय है। वेद चार है – 1. ऋग्वेद 2. यजुर्वेद 3. सामवेद 4. अथर्ववेद। ''वेदोऽखिलोधर्ममूलम्''। हिन्दु धर्म के मूल तत्वों को एकमात्र जानने का साधन वेद हैं। उपनिषदों का अर्थ है ब्रह्मविद्या। तत्वज्ञान के लिए गुरू के पास सविनय बैठना उपनिषद् है। शंकराचार्य ने अविद्या का नाश, ब्रह्मप्राप्ति और उसका ज्ञान तथा दुःख निरोध इन तीन अर्थों को लेकर उपनिषद् को ब्रह्मविद्या का द्योतक माना है। 'ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां व्याख्यानग्रन्थः' कर्मकाण्ड और मन्त्रों के व्याख्यान ग्रन्थ ब्राह्मण है। इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में हिन्दु धर्म के सिद्धान्तों का विवेचन है। वेदांगों के द्वारा मंत्रो का अर्थ,उनकी व्याख्या तथा यज्ञ में उनके विनियोग आदि का बोध होता है। इनमें यज्ञ की आद्योपान्त यज्ञ विधि, यज्ञों की आवश्यक वस्तुऐं, यज्ञ के मन्त्र आदि के सूक्ष्तम निर्देशों प्रणयन है।
स्मृतियों में वेद,उपनिषद,ब्राह्मण, पुराण, आरण्यक आदि का सार है। स्मृतियों में आचार, व्यवहार,कर्म, चारों वर्णों के कर्त्तव्यों का निर्धारण किया है। मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति प्रमुख है।
पुराणों में धर्म तथा ज्ञान है। इनमें ब्रह्म, विष्णु,शिव भागवत, नारद मार्कन्डेय आदि उल्लेखनीय है।
ईश्वर का स्वरूप – हिन्दु धर्म में ईश्वर विचार धुरि है। ईश्वर उपाधियुक्त सगुण सविशेष है। जो स्वयं में निष्क्रिय, निरवयवी, निःप्रपंञ्चः, अपनी वर्णननातीत, विलक्षण माया अपनी शक्ति से उपहित हो जाता है। ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में एम. हिरियन्ना ने लिखा है – '' ईश्वरादि की जो भावनायें की गयी वे साधकों को परम सत्य की यथार्थभाव तक पहुंचने के सोपान के समान है''। ईश्वर वर्णनयोग्य तथा सुगम हो जाने से उपासना का विषय है। ईश्वर ही जगत का सृष्टिकर्त्ता है। ईश्वर ही सृष्टि का उपादान तथा निमित्त दोनों कारण है। ईश्वर सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापी है। वह सृष्टि के अणु व्याप्त है। श्रुतियों में ईश्वर को प्रधानक्षेत्रपति निर्गुण कहा है। ईश्वर सृष्टिकर्त्ता, पालक एवं संहारक है। रामानुजाचार्य ने ईश्वर को परब्रह्म भुवनों का उपादान कर्ता एवं जीवों का नियामक आदि बताया है।

वासुदेवः परं ब्रह्म कल्याणगुणसंयुतः।
भुवनानां उपादान कर्ता जीवनियामकः।।

ईश्वर में केवल साक्षित्व है, भोक्तृत्व नहीं। यह जीवों को उनके कर्मानुसार शुभाशुभकर्मफल प्रदान करता है। उन्हें कर्म करने के लिए प्रेरित करता है–
एष छेव साधुकर्म कारयति स यमेभ्यो लोकेभ्यः उन्नीषिते। ईश्वर जीवों के कर्मों का नियन्त्रण करता है। ईश्वर सृष्टि के समस्त कर्मों का करता हुआ कमलपत्र में जल बिन्दु के समान इन कर्मों के बन्धन में नहीं बंधता है।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न्न स बध्यते।।

ईश्वर कर्मों में लिप्त नहीं होता है इसलिए व सुख, दुःख मोहादि गुणों से रहित रहता है। ईश्वर अविद्या से भी रहित है इसलिए उसमें आनन्दानुभूति होती है। हिन्दु धर्म में त्रिमूर्ति ब्रह्मा,विष्णु तथा महेश की कल्पना है। सृष्टि की रचना के समय ईश्वर को ब्रह्म, पालन कर्त्ता के रूप में विष्णु तथा संहारकर्ता के रूप में महेश ही माना है।

आत्मा का विचार – हिन्दु धर्म में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया है। आत्मा के विषय में ड्यूसन का कथन है– 'This is the most abstract and the there fore the best name which has found of its sole and external theme' आत्मा स्वंयसिद्ध है। वह कोई बाह्य वस्तु नहीं है। तर्क अथवा प्रमाण के द्वारा आत्मा को सिद्व नहीं किया जा सकता है। आत्मा अनुभूति का विषय है। –

नायमात्भा प्रवचनेन लम्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमैवैव बृणुते तेन लभ्यस्तस्यैव आत्माविबृणुते तनू स्वाम्।।

प्रायः प्रत्येक धर्म भारतीय तथा पाश्चात्य सभी दार्शनिकों ने आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया है। केवल अन्तर स्वरूप वर्णन में है। आत्मा सत् चित् आनन्द स्वरूप है। इस जगत में दृष्टिगोचर होने वाला प्रकाश चैतन्य और आनन्द आत्मा का ही परिणाम है। कठोपनिषद में आत्मा का वर्णन करते हुए लिखा है –

अशब्दमस्पर्शरूपभव्ययम् तथा रसं नित्यमगन्धवंञ्चयत्।
अनाद्यन्तं महत परं ध्रुवं निवायतन्मृत्युमुखा तत्प्रमुच्यते।।

आत्मा निराकर है, यह अतिसूक्ष्म है, अणु से भी सूक्ष्म अणु होते हुये भी इनता शक्तिशाली है कि हजारों करोडों एवम् हाइड्रोजन बम,राकेट,सेटेलाईट इसके सम्मुख शून्य सें भी निम्न है किन्तु वह सर्वशक्तिमान होते हुये भी किसी का विनाश नहीं करता न स्वयं कभी नाश को प्राप्त होता है। जीवात्मा तीन प्रकार का होता है – 1. नित्य 2. मुक्त 3. बद्ध।

1. जो जीव मुक्त रहते नित्य है।
2. बद्ध जीव वे हैं जो निरन्तर जन्म एवं मृत्यु के क्रम में निबद्ध रहते है।
3. मुक्त जीव वे हैं जो अच्छे कर्मों के कारण के कारण जन्म एवं मृत्यु के चक्र से छूट जाते हैं।

भगवद् गीता में कहा है –

पुनर्जन्म का सिद्धान्त – हिन्दु धर्म की मान्यता है कि जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् अपने कर्मो के आधार पर जन्म लेती है। यही पुनर्जन्मवाद है। आत्मा अजर अमर एवं शाश्वत है यह कभी नहीं मरती और एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाती है। और आत्मा का दूसरे जीव में जन्म लेना ही पुनर्जन्मवाद है।

पुरूषार्थ – हिन्दु धर्म पुरूषार्थ पर आधारित है। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य पुरूषार्थ है। पुरूषार्थ है – 1. काम 2. अर्थ 3. धर्म 4. मोक्ष। चारों पुरूषार्थ आपस में सम्बन्धित है। काम मनुष्य के संवेगात्मक पक्ष, अर्थ धार्मिक पक्ष, धर्म नैतिक पक्ष, मोक्ष मानवीय स्वभाव के आध्यात्मिक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है। हिन्दु धर्म में मोक्ष प्राप्ति के चार उपाय बताये है–

1. राजयोग।
2. ज्ञानयोग।
3. कर्मयोग।
4. भक्तियोग।

हिन्दु धर्म मानव जीवनकाल चार भागों में विभक्त करता है – 1. ब्रह्मचर्य आश्रम 2. गृहस्थ आश्रम 3. वानप्रस्थ आश्रम 4. संन्यास आश्रम । इस विभाजन के दो आधार हैं – 1. आध्यात्मिक विकास की भावना और जीवन को सुव्यवस्थित रखने की भावना। इस विभाजन से यह आदर्श यह है कि व्यक्ति अपनी अलग अलग अवस्थाओं में अलग अलग कार्य कर सकता है।

हिन्दु धर्म के दो भाग हैं –

1. वैष्णव धर्म और 2. शैव धर्म।

वैष्णव धर्म :–

भारत के उत्तरी एवं पश्चिमी क्षेत्र में अनेक मत मतान्तर अथवा आराधना, उपासना की अनेक विधियां प्रचलित थी, वे एक दूसरे में अन्तर्भूत होती हुई एक सर्वांग पुष्ट वैष्णव धर्म के रूप में प्रगट हो गयी। वैष्णव का उल्लेख सर्वप्रथम पाणिनि के अष्टाध्याय 4/3/93 में विभक्त होता है। वैष्णव धर्म का सर्वाधिक उन्नयन गुप्तयुग में हुआ। गुप्तवंशीय राजा स्वयं को परम् भागवत कहते है। गुप्तकालीन विभिन्न शिलालेखों, मूर्तियों, ताम्र–पत्र. अभिलेखों आदि में वैष्णव धर्म के उन्नयन तथा विकास का सांगोपांग विवरण मिल जाता है। वैष्णव धर्म में भक्ति केन्द्र बिन्दु के रूप में रहा है। वैष्णव धर्म में यज्ञ का विरोध न करते हुये यज्ञ की निरर्थकता सिद्ध कर दी। यह धर्म मानता है कि यज्ञ से मोक्ष नही मिलता है उपास्य देव के प्रति एकनिष्ठ होते हुये भक्ति से मोक्ष प्राप्ति सम्भव है। भगवद गीता में लिखा है ईश्वर विराट है इन्द्रियातीत है, किन्तु एक लौकिक विग्रहधारी भी है। जैसा मित्र के प्रति मित्र अथवा पिता के प्रति पुत्र । भक्तिगत यह प्रेम लौकिक प्रेम से नितान्त भिन्न है। वैष्णव धर्म में भक्ति के साथ साथ मनुष्य को कर्म अर्थात् अपने कर्त्तव्य पालन की शिक्षा दी निष्काम काम करने वाला व्यक्ति ही भक्ति कर सकता है।

वैष्णव धर्म में मनसा, वाचा, कर्मणा अहिंसा पर जोर दिया है। अश्वमेघ यज्ञ में बलि नहीं देने की परम्परा का आरम्भ हुआ। ब्रह्मादि देवता का उसी स्थान में वास होता था जहाँ वेद यज्ञ,तप, सत्य अहिंसा आदि के आधार पर मनुष्य निवास करते थे। विष्णु धर्म के उपास्य विष्णु, नारायण, कृष्ण और राम थे।

जैन धर्मः–

जैन धर्म का विकास छठी शताब्दी में हुआ। यद्यपि जैन धर्म के प्रवर्तक चौबीस तीर्थकर थे किन्तु जैन धर्म का श्रेय अन्तिम तीर्थकर महावीर स्वामी को दिया जाता है। जैन धर्म चौबीस तीर्थकरों के उपदेश का परिणाम है।

जैन धर्म के अनुसार मोक्ष जीवन का चरम लक्ष्य है। जीव और पुद्गल का संयोग बन्धन है। इसके विपरीत जीव का पुद्गल से वियोग मोक्ष है। मोक्षावस्था में जीव का पुद्गल से पृथक्करण हो जाता है। जीव के बन्धन का कारण जीवन का पुद्गल की ओर प्रवाहमान होना है। मोक्ष की प्राप्ति तभी सम्भव है। जब पुद्गल के कणो का प्रवाह अबरूद्व हो जाता है। कुछ पुद्गल जीव के अन्दर अपना स्थान बना लेते है। नये पुद्गल के कणों को जीव की ओर प्रवाहित होने से रोकना 'संवर' है। पुराने पुद्गल के कणों का क्षय 'निर्जरा' है। नये पुद्गल के कणों को रोककर तथा संचित पुदगल के कणों को नष्ट कर जीव कर्म पुद्गल से मुक्त हो जाता है तो वह जन्म मृत्यु के चक्र से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। जैन धर्म में मोक्ष के लिये सम्यक ज्ञान को आवश्यक माना है। सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति तीर्थकरों के प्रति श्रद्वा और आस्था से ही सम्भव है। जैन धर्म में मोक्ष के लिए त्रिरत्न सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र तीनों ही अनिवार्य है।

जैन धर्म में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पञ्चमहाव्रतों को ग्रहण कर मानव मोक्ष के योग्य बन जाता है।

पञ्चमहाव्रतों का पालन करते हुए जीव आत्मा के अनन्त चतुष्टय अर्थात अनन्त ज्ञान,अनन्त शक्ति, अनन्त दर्शन और अनन्त आनन्द को प्राप्त करता है।

जैन धर्म में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि उनका मानना है कि ईश्वर का ज्ञान युक्तियों से सम्भव है, ईश्वर को प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर नहीं जाना जा सकता है। जैन धर्म में ईश्वर के अस्तित्व और उसके गुणों का खण्डन किया गया है। इसलिए जैन धर्म अनीश्वरवादी है। जैन धर्म अनीश्वरवादी होते हुए भी यह मानता है कि धर्म के लिए ईश्वर और मनुष्य का रहना आवश्यक है। ईश्वर उपास्य तथा मानव उपासक है। धार्मिक चेतना के प्रादुर्भाव तथा विकास के लिए उपास्य तथा उपासक में भेद जरूरी है। उपासक में उपास्य के प्रति निर्भरता,श्रदा,भय,आत्मसमर्पण की भावना तथा उपास्य में उपासक के प्रति करूणा, क्षमा तथा प्रेम की भावना से समाविष्ट रहते है। जैन धर्म में ईश्वर के स्थान पर तीर्थकरों को माना है। ये मुक्त होते है। इनमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति ,अनन्त सुख का वास होता है।

जैन धर्म में पंचरमेष्टि अर्हत,सिद्व,आचार्य,उपाध्याय और साधु की गणना होती है। जैन धर्म की मान्यता है कि तीर्थकरों के बताये हुए मार्ग पर चलकर निर्वाण को प्राप्त किया जा सकता है। जैन धर्म मूल्यों में विश्वास करता है। जैन धर्म में पञ्चमहाव्रत की महत्ता पर बल दिया ।

ये पञ्चमहाव्रत है :–

अहिंसा :–

अहिंसा सुत्तं

तन्थिमं पढमं महावीरेण देसियं।अहिंसा निउणा दिठ्टा सत्य भू सू संजन्मों।

महावीर स्वामी ने अष्टादश धर्म स्थानों में सर्वप्रथम अहिंसा को माना है। त्रस और स्थावर समस्त जीवों के साथ संयमित व्यवहार करना अहिंसा है। अहिंसा समस्त सुखों की दातृ है।

सत्य :–

सच्च सुतं

नित्य कालऽष्यमत्तेणं मुसावाय विवजणं। भाषियव्यं हियं सत्यं निचाऽऽउत्तेणं दुष्करं।।

सदैव अप्रवादी और सतर्क रहकर, असत्य को त्यागकर हितकारी सत्य वचन का भाषण करना चाहिए। जो भाषा कठोर हो दूसरो को दुःख पहुंचाने वाली हो वह सत्य ही क्यों ना हो नहीं बोलना चाहिए।

अस्तेय –

अतेणग सुत्तं।

चित्तमंतमचिंत वा, आपं वा जइ वा बहुं। दंतसोहणमित्तंषि, उग्गहं से अजाइया।

किसी भी सचेतन हो या अचेतन, अल्प हो अधिक, छोटी सी भी कोई वस्तु किसी गृहस्थ व्यक्ति के अधिकार क्षेत्र में हो उसकी अनुमति के बिना न तो ग्रहण करना चाहिए,न दूसरों को ग्रहण करने के लिए कहना चाहिए और नहीं ही ग्रहण करने वाले को स्वीकृति देनी चाहिए।

ब्रह्मचर्य –

बंभचरियं सुत्तं

विरई अंबभचेरस्स, कामभोगरसन्नुणा। उग्गं महव्वयं बंभं धारेयत्वं सुदुक्करं।

मन, वचन, और कर्म से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। यह ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और तीर्थकरोपदिष्ट है। वासनाओं का पूर्णतः परित्याग कर देना चाहिये।

अपरिग्रह :–

धन,सम्पत्ति, भोग जन्म वस्तुओं को अपनी शरीर रक्षा आवश्यकताओं से अधिक केवल अपने ही भोग के लिए स्वार्थ के वशीभूत संचय करना परिग्रह है और इन सबसे बचना अपरिग्रह है। शब्द, स्पर्श,रूप,रस और गन्ध इन्द्रियों का विषयों का परित्याग करना अपरिग्रह है।

इन पांचो व्रतों का यदिजाति, देश, काल और समय की सीमा से रहित होकर पालन किया जाये तो उस अवस्था में ये महाव्रत कहलाते हैं।

हिन्दु धर्म के अनुसार ही जैन धर्म जीवों के जन्म एवं मृत्यु के अनवरत क्रम बन्धन को मानता है। जैन धर्म में बन्धन का अर्थ जीवों को दुःखों का सामना करना तथा जन्म जन्मान्तर तक भटकना है। यदि जीव बन्धन की स्थिति में रहता है तथा उसे दुःख होता है तथा उसे पुनः जन्म ग्रहण करना पडता है। जैन धर्म में जीवों को अनन्त माना है। जब जीव बन्धन की अवस्था में होता है तब अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्तशाक्ति और अनन्त आनन्द की अवस्था से वचिंत रह जाता है। बन्धन की अवस्था में जीव में वासनाओं का वास होता है। यह शरीर पुद्गल कणोंसे निर्मित है। जैन धर्म में पुद्गल कणों को आकृष्ट करने के कारण इन प्रवृत्तियों को कषाय को कहा है।जीव पुद्गल कणों को किस प्रकार आकृष्ट करता है यह प्रत्येक जीव के पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर ही निशिचित होता है। जैन धर्म में कर्मवाद को भी स्वीकार किया गया है। ये कर्म हैं–(1) आयुकर्म (2) ज्ञानावरणीय (3) अन्तराय कर्म (4) गोत्रकर्म (5) वेदनीय कर्म (6) दर्शनावरणीय कर्म।

जीव के द्वारा जैसा कर्म किया जाता है वैसे ही पुद्गल का प्रवाह जीव में होता है तो उसका उसी रूप में पुनर्जन्म होता है। जैन कर्म के सिद्वान्त के अनुसार कर्मो के दस करण होते हैं – बन्ध,सत्व,उदय,उदीरणा,उत्कर्षण,अपकर्षण,संक्रमण,उपशम,निधत्ति और निकाचन। ये ही कर्म की अवस्थाऐं है। अपनी सत्ता में विद्यमान कर्म जब अपनी स्थिति को कर फल देते हैं तो वह कर्मो का उदय है। जब कभी आत्मा अपने भावों की तीव्रता के द्वारा कर्मो की स्थिति पूरी होने से पूर्व कर्मो को फलोन्मुख बना देती है तो वह उदीरणा है। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि जैसे बिना पके हुए फलों को दवाईयों से पका लिया जाता है वैसे ही कर्म उदीरणा है। उदीरणा के विपरीत कर्मो के स्थितिकाल व फलदायिनी शक्ति में विशेष भावों द्वारा वृद्धि करना उत्कर्षण है। कर्मों के स्थितिकाल व फलदायिनी अनुभाग को घटाने का कर्म अपकर्षण है। संक्रमण कर्मप्रवृत्तियों के उपभेदों का एक दूसरे रूप में परिवर्तन करना है। कर्मो को उदित होने से रोकना उपशम है। कर्मों को उदय में आने से तथा अन्य प्रकृति रूप संक्रमण होने से रोकना निधतिकरण है। निकाचन का अभिप्राय कर्मो को ऐसी अवस्था में ले जाना कि जिससे उनका उदय, उदीरण, संक्रमण उत्कर्षण या अपकर्षण इन किसी भी परिवर्तन का न होना है।

बौद्ध धर्मः–

गौतम बुद्ध ने अपने धर्म के प्रचार के लिए बौद्ध संघ की स्थापना की। जो भी अनुयायी इस संघ में सम्मिलित होना चाहता है था उस भिक्षु को ''बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।'' का व्रत लेना पड़ता था। बौद्ध धर्म के द्वारा सभी जाति, वर्ग, समुदाय सभी के लिए खुले थे। बुद्ध ने अपने संघ में स्त्रियों को भी प्रवेश दिया। बौद्ध धर्म के धारण के लिए यह आवश्यक था कि धर्म के संस्थापक के प्रति अगाध आस्था हो और इसी श्रद्धा के

परिणामस्वरूप गौतम बुद्ध ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठित हो गये। बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने बुद्ध को ईश्वर के रूप में स्वीकार किया।

बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध है। गौतम बुद्ध संसार के प्राणियों को दुःखों से संत्रस्त देखकर, संसार, दुखों के प्रभाव से कैसे मुक्त हो सकता है इसका ज्ञान दिया। गौतम बुद्ध ने यह संसार दुःखों से परिपूर्ण माना है। इस जगत में दुःख के जितने भी कारण हैं उनके समाधान को जानने के लिए मानव को उत्प्रेरित किया। गौतम बुद्ध ने जीवन का उद्देश्य दुःख निरोध (cassation of suffering) माना है। गौतम बुद्ध ने कहा है– ''मैं दुःख और दुःख निरोध पर ही अधिक जोर देता हूँ।'' जब गौतम बुद्ध को सत्य का ज्ञान प्राप्त हुआ तो उन्होंने लोक कल्याण की भावना से धूम–धूम कर जन–जन को बौद्ध धर्म का सन्देश दिया। बुद्ध के उपदेशों के आधार पर बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। बौद्धधर्म सर्वप्रथम भारत में ही विकासित हुआ। बौद्धधर्म के भारत में विकासित होने का कारण हिन्दु धर्म की रूढ़िवादिता तथा जन समुदाय में असन्तोष की भावना थी। बौद्ध धर्म केवल भारत तक ही सीमित न रहकर बौद्ध भिक्षुक अनुयायियों द्वारा विदेशों तक इसका प्रचार एवं प्रसार हुआ। यह बौद्ध धर्म विश्वधर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।गौतम बुद्ध के निर्वाण के बाद उनके शिष्यों ने उनके उपदेशों को 'त्रिपिटक' में संग्रहित किया। त्रिपिटक बौद्ध धर्म के ज्ञान की ये तीन पिटारियां हैं – सुत्तपिटक, अभिधम्म पिटक और विनय पिटक। बौद्धों की गीता धम्मपद है त्रिपिटक का रचनाकाल ईसा से तृतीय शताब्दी माना गया है।

बौद्ध धर्म की मुख्य शिक्षाऐं चार आर्य सत्य हैं और ये ही बौद्ध धर्म का सार है–

1. संसार दुःखों से परिपूर्ण है।
2. दुःखों का कारण क्या है।
3. दुःखों का अन्त सम्भव है।
4. दुःखों का अन्त का मार्ग है।

प्रथम आर्यसत्य दुःख द्वितीय आर्य सत्य दुःख समुदाय, तृतीय आर्य सत्य दुःख निरोध, चतुर्थ आर्य सत्य दुःख निरोध का मार्ग है। गौतम बुद्ध ने 'मज्झिम निकाय' में कहा है ''चार आर्य सत्यों से अनासक्ति, वासनाओं का नाश, दुःखों का अन्त, मानसिक शांति, ज्ञान, प्रज्ञा तथा निर्वाण सम्भव हो सकते हैं।

अष्टांगिक मार्ग :– गौतम बुद्ध ने माना है कि दुःख का निरोध सम्भव हैं हम अष्टांगिक मार्ग पर चलकर दुःख का निरोध कर सकते हैं। यह मार्ग है–

1. **सम्यक दृष्टि**–वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जनना सम्यक दृष्टि है। मानव अविद्या के कारण मिथ्या दृष्टि से अनात्मा को आत्मा मान लेता है, नश्वर शरीर, नश्वर जगत को अविनाशी मान लेता है। सम्यक दृष्टि ज्ञान के पथ की ओर अग्रसर होने के लिए प्रथम सोपान है।
2. **सम्यक संकल्प –** त्याग एवं परोपकार की भावना से प्रेरित होकर इन्द्रियों को समस्त विषयों से विमुख रखते हुए जो अशुभ है उसे नहीं करने का संकल्प सम्यक संकल्प है।
3. **सम्यक वाक् –** मन की शान्ति के लिए सत्य एवं प्रिय वचनों का प्रयोग सम्यक वाक् है।
4. **सम्यक् कर्मान्त –** हिंसा, स्तेय और इन्द्रिय भोग इन कर्मों का परित्याग करना।
5. **सम्यक् आजीविका –** जीवन निर्वाह के लिए अशुभ मार्ग का परित्याग करना।
6. **सम्यक् व्यायाम –** हमारा मन विचारों के प्रवाह का स्थल है। मन के दुरर्विचार को बाहर निकालना, नये दुर्विचार को मन में आने से रोकना, सद्विचारेां को आत्मसात करना, सद्विचारों को हृदय में स्थायित्व देने के लिए सतत् प्रयासरत रहना ही सम्यक् व्यायाम है।
7. **सम्यक् स्मृति –** निर्वाण के इच्छुक व्यक्ति के लिए सम्यक स्मृति अभ्यास आवश्यक है। मानव अज्ञान के वशीभूत होकर शरीर, मन, संवेदना आदि को स्थायी तथा सुखकारक समझने लगता है जिससे उसे देह के नाश पर दुःख का अनुभव होता है। सम्यक् स्मृति से मपनव को शरीर की नश्वरता का ज्ञान रहता है और वह समाधि की राह पर अग्रसर हो जाता है।
8. **सम्यक् समाधि –** उपर्युक्त सात मार्गों के पथ पर चलकर मनुष्य चित्तवृत्तियों का निरोध कर समाधि तक पहुंच सकता है।

गौतम बुद्ध ने समाधि की चार अवस्थाऐं (स्थितियां) बतायी हैं। समाधि की प्रथम अवस्था में साधक बुद्ध के चार आर्य सत्य दुःख, दुःख समुदाय, दुःख निरोध, दुःख निरोध का मार्ग इनका मनन एवं चिन्तन करता है। दूसरी अवस्था में मन में कोई शंका, संशय नहीं रहता है सिर्फ आनन्द व शान्ति की अनुभूति होती है। तीसरी अवस्था में आनन्द व शान्ति से तटस्थ रहने का प्रयास किय जाता है। समाधि की चतुर्थ अवस्था में व्यक्ति की समस्त चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है और वह अर्हत हो जाता है।

बौद्ध धर्म हिन्दु धर्म से प्रस्फुटित है इसलिए इनके विचारों में, सिद्धान्तों में हिन्दु धम्र का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित है।

गौतम बुद्ध ने मनुष्य के नैतिक आचरण के लिए दस शीलों का नियमन किया। ये दस शील हैं–

(1) अहिंसा (2) सत्य (3) अस्तेय (4) ब्रह्मचर्य (5) अपरिग्रह (6) नृत्य ज्ञान का त्याग (7) सुगन्ध मालादि का त्याग (8) असमय भोजन न करना (9) कोमल शय्या से विरक्ति (10) कामिनी कांचन से वैराग्य। इन दस शीलों में गृहस्थ के लिए पांच शीलों का पालन जरूरी बताया। दस शीलों का पूर्ण पालन की अनिवार्यता भिक्षुओं के लिए थी।

बुद्ध आत्मा की सत्ता और आत्मा में निहित देवत्व में विश्वास रखते थे। बुद्ध का मानना थाा कि जीवन का पहला कर्त्तव्य मानव स्वभाव के देवत्व का विकास करना है जिससे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य आदि दुष्ट वृत्तियां नष्ट होकर मनुष्य निर्वाण के योग्य बन जाये। बौद्ध धर्म की शिक्षाऐं यथार्थ एवं व्यावहारिक तथा बौद्ध धर्म पूर्ण आशावादी था।

बौद्ध संगीति– बौद्ध धर्म के विकास में संगीति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। महासभाओं में बुद्ध के उपदेशों को सर्वजनहिताय के लिए गाया था इसलिए इनका नाम संगीति हुआ।

प्रथम संगीतिः–अजातशत्रु राजा ने 483 ईसा पूर्व में गौतम बुद्ध के निर्वाण प्राप्ति के बाद बुद्धधर्म की प्रथम सभा का आयोजन किया। इसमें बुद्धधर्म और विनय विषयक उपदेशों का संकलन किया। बौद्ध ग्रन्थ सुत्तपिटक तथा विनयपिटक के रूप में बौद्ध के ज्ञान का विभाजन हुआ। सुत्तपिटक में बुद्ध के समस्त वार्तालापों को निबद्ध किया और विनयपिटक में भिक्षुओं के आचरण नियम तथा बौद्धसंघ के नियम संग्रहित किये।

द्वितीय संगीतिः–द्वितीय संगीति बुद्ध निर्वाण के 300 वर्षों बाद 383 ईसा पूर्व वैशाली नगरी में आयोजित हुई। इसमें बौद्ध धर्म के अनुयायी थेरवादी तथा महासांघिक दो भागों में विभाजित हो गया। थेरूवादी बौद्ध प्राचीन विनय का प्रतिपदन करते थे और महासांघिक बौद्ध परिवर्तन चाहते थे। यहीं से बौद्ध धर्म की विभिन्न शाखाऐं प्रारम्भ हुई।

तृतीय संगीतिः—बौद्ध भिक्षुओं का तिष्म की अध्यक्षता में लम्बे समय तक विचार विमर्श हुआ। इसके दो परिणम प्राप्त हुए। बौद्ध धार्मिक ग्रन्थों में अभिधम्म पिटक नामक तीसरे पिटक का संकलन हुआ। इसमें प्रथम दोनों पिटकों के सिद्धान्तों और बौद्ध धर्म के दार्शनिक विवेचन तथा अध्यात्म चिन्तन था। दूसरा परिणाम, तिष्यरचित कथावत्थु ग्रन्थ प्रमाण रूप में स्वीकृत हुआ।

चतुर्थ संगीतिः—चतुर्थ संगीति का आयोजन सम्राट कनिष्क के राज्यकाल मे हुआ। इस संगीति में ग्रन्थों और उपदेशों के क्लिष्ट अंशों की पर्याप्त व्याख्या की गयी। तीन पिटकों के तीन विशाल भाष्यों की रचना की गयी ये विभाषाशास्त्र कहलाये।

बुद्ध के अनुसार प्रत्येक वस्तु कारण के अनुरूप ही उत्पन्न होती हैं इस प्रकार समस्त संसार नश्वर हैं विश्व की प्रत्येक वस्तु समुद्र केजल के समान चलायमान हैं परिवर्तित होना विश्व का स्वरूप है। बुद्ध ने अनित्यवाद की व्याख्या करते हुए लिखा है ''जो वृद्ध हो सकता है वह वृद्ध होकर ही रहेगा। जिसे रोगी होना है रोगी होकर ही रहेगा, जो मृत्यु के आधीन है वह अवश्य मरेगा।''

समस्त संस्कार क्षणिक हैं। क्षणिक संस्कारों का उच्छेद वासना के उच्छेद से ही सम्भव हैं जब तृष्णा नामक वासना पूर्णतः नष्ट हो जाती है तो व्यक्ति, निर्वाण को प्राप्त हो जाता है। 'निर्वाण' महाशून्यता का नाम है। जिस प्रकार प्याज को छीलते रहने से अन्त में प्याज नाम की कोई वस्तु नहीं रहती उसी प्रकार वासना की समस्त पर्तों को हटा देने पर व्यक्ति महाशून्यता की ओर चला जाता है। इसी अवस्था में दुखों का अन्त होता है। निर्वाण से पुर्नजन्म की सम्भावना का अन्त हो जाता है। निर्वाण प्राप्त व्यक्ति को शान्ति की प्राप्ति हो जाती है। व्यक्ति उसी प्रकार से एक कल्पना है जिस प्रकार से रथ, रथा, धुरा, पहिये, वस्त्र आदि तत्वों की विशेष रचना है। जिस प्रकार रथ के सभी अवयवों को अलग—अलग कर देने पर रथ नाम की कोई वस्तु नहीं रहती है उसी प्रकार व्यक्ति के नाम रूप आदि का पूर्ण नाश होने पर निर्वाण होता है। बौद्ध दर्शन में — क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति वा वासना स्थिरा।

केवचसार स मार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते।।

बौद्ध दर्शन पदार्थ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु को ही मानता है, आकाश को पदार्थ नहीं मानता है क्योंकि आकाश शून्य है, स्थान नहीं घेरता है। इसलिए आकाश पदार्थ नहीं है।

बौद्ध धर्म कर्म स्वातन्त्रय पर बल देता है। व्यक्ति स्वयं ही अपने भाग्य का निर्माता होता है। बौद्ध धर्म में लिखा है ''आदमी स्वयं अशुभ करता है और स्वयं अपने दुःख का कारण बनता है, आदमी स्वयं करने से रूकता है और स्वयं अपनी पवित्रता का कारण बनता है''। इससे स्पष्ट होता है कि जीवन में सुख और दुः.ख की प्राप्ति हमारे द्वारा किये गये कर्मों का स्वतः फल है। बौद्ध धर्म का मानना है कि आत्मा नामक कोई तत्व नहीं है। गौतम बुद्ध ने शाश्वत आत्मा का निषेध करते हुए लिखा है ''विश्व में न होई आत्मा है, और न आत्मा की तरह अन्य कोई वस्तु है। पांच ज्ञानेन्द्रियों के आधार स्वरूप मन और मन की वेदनाऐं, ये सभी आत्मा या आत्मा के समान अन्य किसी से बिल्कुल शून्य है।'' आत्मा की कल्पना पूर्णतः मूर्खता है। यह गौतम बुद्ध की अद्वितीय ज्ञान था कि उन्होंने नित्य आत्मा का निषेध करके भी पुनर्जन्म को माना है। गौतम बुद्ध के अनुसार एक जन्म से दूसरे जन्म में प्रविष्ट होना ही पुनर्जन्म नहीं है अपितु पुनर्जन्म का अर्थ विज्ञान प्रवाह की अविच्छिन्नता हैं जब एक विज्ञान प्रवाह का अन्तिम विज्ञान समाप्त हो जाता है तब अन्तिम विज्ञान की मृत्यु हो जाती है ओर एक नवीन शरीर में एक नवीन विज्ञान का जन्म होता है यही पुनर्जन्म है। बुद्ध ने पुर्नजन्म को दीपक की लौसे स्पष्ट किया हैं जिस प्रकार एक दीपक से दूसरे दीपक को जलाया जा सकता है उसी प्रकार वर्तमान जीवन की अन्तिम अवस्था से भविष्य जीवन की प्रथम अवस्था का विकास सम्भव है। और इसी व्याख्या के आधार पर ही बुद्ध पुनर्जन्मबाद के सिद्धान्त को जीवित कर पाये।

बुद्ध ने ईश्वर की सत्ता को नहीं माना हैं उनका मानना है कि यह संसार प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम से संचालित है, विश्व की समस्त वस्तुऐं कार्य—कारण की एक श्रृंखला है। किसी भी वस्तु की उत्पत्ति बिना कारण के नहीं होती है। पेड, पौधे, मनुष्य सभी कार्य कारण के नियम के अधीन हैं। अधिकांश धर्म के समर्थक इस उत्पत्ति के लिए ईश्वर को संचालक मानते हैं। किन्तु बुद्ध का मानना है कि यह मत भ्रामक है क्योंकि ईश्वर किसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए ही कारण नियम का निर्माण कर सकता है जिससे ईश्वर की अपूर्णता प्रमाणित होती है। अतः कारण नियम के आधार पर ईश्वर को सिद्ध करना संभव नहीं है। बुद्ध ने अनीश्वरवाद के कारण ही शिष्यों को 'आत्म दीपो भव' का उपदेश दिया। जिसे ग्रहण कर शिष्य अपने को प्रकाशमान कर सके। बुद्ध के निर्वाण के बाद बौद्ध धर्म में गौतम बुद्ध को ईश्वर के रूप में स्थापित किया।

इस्लाम धर्मः—

इस्लाम धर्म की स्थापना हजरत मुहम्मद साहब ने की। इस्लाम धर्म की आधार शिला कुरान है। इस्लाम धर्म की मान्यता है किकुरान में वर्णित ज्ञान को संसार के कल्याण के लिए मुहम्मद के ह्रदय में प्रकाशित किया। कुरान प्रत्येक मुसलमान द्वारा प्रामाणिक माना है।

इस्लाम धर्म की विशेषताऐं :—

1. इस्लाम धर्म एकेश्वरवादी है और अपनी इसी विशेषता के आधार पर इस्लाम अनेकेश्वरवाद तथा मूर्ति पूजा को दूर करने में सक्षम हुआ।
2. इस्लाम ही एकमात्र ऐसा धर्म है जिसमें पुरूषों के समान स्त्रियों को अपने पिता की सम्पत्ति में बराबर का अधिकार था। कुरान में बहा कहा गया है ''माता — पिता जो कुछ भी थोडा छोडकर मरते है उसमें स्त्री—पुरूष दोनों का भाग है''।
3. इस्लाम धर्म में बहु विवाह को अपनाया गया बहुविवाह के पक्ष में लिखा है— ''यथेच्छ विवाह करो एक,दो,तीन,चार परन्तु यदि भय हो कि प्रत्येक विवाहिता के साथ उचित व्यवहार नही कर सकोगे तो एक ही विवाह कर संतोष करो।
4. इस्लाम धर्म में अपराधी के लिए कठोर दण्ड व्यवस्था का उल्लेख है।
5. इस्लाम धर्म की सर्वप्रमुख विशेषता सामूहिक नमाज अदायगी पर बल देना है जिससे कि मुसलमानों में परस्पर भ्रातृभाव भावना का उदय हो यह अन्य धर्मो में नही है।
6. इस्लाम धर्म में एक मुसलमान के ह्रदय में दूसरे मुसलमान के प्रति परस्पर प्रेम,सौहार्द और त्याग की भावना होनी चाहिए और अल्लाह तक पहुंचने का एकमात्र माध्यम यही है।

इस्लाम धर्म के सम्प्रदायः—

1. शिया और सुन्नी सम्प्रदाय :— मोहम्मद साहब के दामाद वीरवर अली के पुत्र इमाम हुसैन के अनुयायी शिया कहलाये तथा खलीफा के अनुयायी सुन्नी कहलाये। शिया और सुन्नी दोनों ही सम्प्रदाय कुरान की सत्ता को स्वीकार करते है।
2. आगारवांनी —इस मृत के समर्थकों के अनुसार आंगरवां ईश्वर का अवतार है। इसे इस्माइल्स भीकहते है।

धार्मिक पुस्तकें —इस्लाम धर्म की अन्तिम धार्मिक पुस्तक कुरान है। कुरान में चार अन्य धार्मिक पुस्तकों की चर्चा है।

1. सबू एइब्राहिमी — इब्राहिम को प्रदान की गयी।
2. तौरात तोराह — मूसा को प्रदान की गयी।
3. जबूर — दाउद को प्रदान की गयी।

4. इंजील – ईसा को प्रदान की गयी।

इस्लाम के दो प्रमुख वर्ग है – शिया और सुन्नी । दोनो वर्गो के सिद्वान्त लगभग समान ही है।

3. इमामिया– इमामिया मत के समर्थक बारह इमाम की सत्ता को मानते है।
4. सूफीमत – सूफीमत का मानना है कि जो कुछ सत्ता है वह ईश्वर ही है। सूफी मत का साधना तन्त्र 'अतलहक' (मैं ही ईश्वर हूँ, ईश्वर के चरणों में सर्वस्व अर्पित कर उसमें लय हो जाना इस मत की चरम परिणति है। सूफीमत रहस्यवाद पर आधारित है। सूफी मत निराशावाद और दुःखात्मक प्रवृत्तिको मानती है।

इस्लाम के पांच तथ्य – इस्लाम धर्म के पांच धार्मिक कर्त्तव्य बताये है। ये इस्लाम धर्म के आधार है। ये पांच आधार हैः–

1. **मत का उच्चारण** –प्रत्येक धर्म के अनुसार इस्लाम धर्म की भी अपनी नियमावली है, प्रतिज्ञाऐ है। इस्लाम धर्म की प्रथम मान्यता है कि इस्लाम धर्म के मत का प्रतिदिन उच्चारण करना चाहिये। कुरान में लिखा है '' ला इलाह इल्ल ल्लाह मुहम्मदन् रसूलल्लाही'' (अल्लाह के सिवाय कोई दूसरा ईश्वर नहीं है। तथा मुहम्मद इसके देव दूत है।

इसमें प्रथम कथन इस्लाम एकेश्वरवाद तथा द्वितीय कथन देवदूत का द्योतक है।इस्लाम धर्म में मोहम्मद साहब को अल्लाह (ईश्वर) का देवदूत कहा है।

2. **नमाजः–** इस्लाम धर्म का दूसरा स्तम्भ नमाज पढना है। इस्लाम धर्म में सूर्योदय से पूर्व, दोपहर में, दोपर के बाद, सूर्यास्त के बाद तथा शयन से पूर्व पांच बार नमाज पढने पर बल दिया। नमाज अदायगी से पूर्व अंग शुद्धि पर बल दिया है। अंग शुद्धि का नाम वजू है। वजू का क्रम है –

1. दोनों कलाई धोना।
2. सिर्फ जल से मुख धोना।
3. पानी से नाक भीतरी भाग धोना।
4. चेहरा धोना।
5. हाथको केहलू तक धोना।

जल के अभाव में मिट्टी से प्रक्षालन किया जाना चाहिये यह क्रिया तपम्मुख कही जाती है। नमाज दो प्रकार की है– फर्द ओर सुन्नत। वैयाक्तिक नमाज फर्द है।और सामूहिक नमाज सुन्नत है।इस्लाम धर्म में कहा है कि नमाज अदा करते समय काबा की ओर मुख करके अल्लाह की इबादत करनी चाहिय।

3. **जकात –** जकात अर्थात् खैरात का अर्थ है अपनी आय का एक अंश दान करें। मुहम्मद साहब ने समाज की आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए जिन मुसलमानों की आय अधिक थी उन्हें गरीबों को अपनी आय का दान करने के लिए जकात को आरम्भ किया। कुरान में लिखा है – '' जब तक अपनी प्रिय वस्तु में से खर्च नहीं करोगे तब तक पुण्य को नहीं पा सकते''।

4. **रमजान के महीने में उपवास रखना :–** इस्लाम धर्म में रमजान माह की पवित्रता के आधार पर उपवास रखने की अनिवार्यता बतायी है। उपवास के तीन नियम कुरान मेंबताये गये है–

i. पेट व शरीर को अपनी लालसा की संतुष्टि से रोकना।
ii. आंख, कान,जिह्वा,नाक,हाथ,पैर तथा शरीर के अन्य अवयों को अपने अधीन रखना तथा उन्हें पाप करने से रोकना।
iii. मन को सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त रखना तभी सभी विचारों को ईश्वर पर केन्द्रीभूत रखना ।

5. **हज करनाः–** इस्लाम धर्म में प्रत्येक मुसलमान के लिए हज को जरूरी माना है। हज का तात्पर्य मक्का जाना है। क्योंकि मक्का से ही इस्लाम धर्म का आरम्भ तथा विकास हुआ। मक्का शहर में ही काबा है। मुसलमानों के लिए हज के लिए आवश्यक शर्ते निम्न क्रम में है–

1. अपने पापों का प्रायश्चित करना, अपने कर्ज को अदा करना तथा खैरात में हिस्सा लेना।
2. धर्मात्मा तथा दानी व्यक्ति के साथ संगत करना।
3. मक्का यात्राके पूर्व दो रकात पाली नमाज पढ़ना तथा कुरान की मुख्य आयतों का पाठ करना।

ईसाई धर्म :– ईसाई धर्म का विकास यहूदी धर्म से हुआ । ईसाई धर्म का दृष्टिकोण समन्वयात्मक है। ईसाई धर्म के संस्थापक ईसा मसीह थे। ईसाइयों का धर्मग्रन्थ बाइबिल है। बाइबिल के दो खण्ड है। वे है – 1. पुरातन सुसमाचार 2. नूतन सुसमाचार।
पुरातन सुसमाचार यहूदी धर्म का मूल ग्रन्थ है। नूतन सुसमाचार यहूदी धर्म का मूल ग्रन्थ है। इसमें ईसा के जीवन तथा उपदेशों का संकलन है। इसमें 26 ग्रंथ है। इन दोनों ग्रन्थों का संकलन कोन्सटेंडीन के द्वारा 325 ए.डी. में हुआ।

ईसाई धर्म में ईश्वर विचार :– ईसाई धर्म की मान्यता है कि चरम्सत्ता ईश्वर है। वह अनन्तदृष्टि,अनन्तज्ञान, करूणा आदि से युक्त विश्व का संचालक नैतिक शासक तथा नियन्ता तथा निर्णायक है। ईश्वर प्रेममय है। बाइबिल में लिखा है & "The God of Christianity is God of love". यह प्रेम ईसामसीह की देन है। ईश्वर केवल उन्हीं के प्रति प्रेममय दृष्टि रखता है। जो शुभ तथा विश्वासी होते हैं। ईसाई धर्म में ईश्वर को पिता की संज्ञा दी है। नूतन सुसमाचार ग्रन्थ में ईश्वर के विषय में 300 बार पिता शब्द का उल्लेख हुआ है। The Father' 'O Father' 'My Father' 'Your Father' 'Our Father' ईसा मसीह ईश्वर और मनुष्य के समन्वय के प्रतीक थे। यद्यपि उन्होनें जीवन काल में ईश्वरत्व को पाया किन्तु वे स्वयं को ईश्वर का पुत्र हूँ। (I am Son of God) कहते है। उन्होंने कहा है पिता हमसे महान है। (Father is greter then I) ईसाई धर्म में ईश्वर को अविनाशी,अजर तथा अमर माना है। क्योंकि ईसा मसीह की बिना पिता के उत्पत्ति हुई इसलिए माना कि न तो इसकी उत्पत्ति हुई और नहीं इसका विनाश हुआ। इस धर्म में ईश्वर अर्थात् ईसा मसीह में त्रिमूर्ति अर्थात् सृजनकर्ता, पालनकर्ता, और संहारकर्ता के रूप में स्थापित किया। इस प्रकार ईसाई धर्म एंकेश्वरवादी है।

2. जगत् का स्वरूप – ईसाई धर्म के अनुसार जगत् सत्य है। ईश्वर जगत का स्रष्टा तथा जगत् ईश्वर की सृष्टि है। जगत् का प्रादुर्भाव ईश्वर ने शून्य से किया।

अशुभ की अवधारणा :– ईसाई धर्म में भी अन्य धर्मो के समान अशुभ की सत्ता को माना गया है। यह विश्व अनेक प्रकार के अशुभ तत्वों से परिव्याप्त है जैसे प्राकृतिक अशुभ,बौद्धिक अशुभ,तात्विक अशुभ, सामाजिक अशुभ,नैतिक अशुभ आदि। मानव स्वयं ही अशुभ का कारण है। वह वंशपरम्परागत सिद्धान्त तथा अन्य प्रकार से इस अशुभ को पीढी दर पीढी हस्तान्तरित करता है। यह अशुभ तत्व यथार्थ है किन्तु ईसाई धर्म के आशावादी होने के कारण मानना है कि मानव ईश्वर के प्रतिश्रद्धा,प्रेम,आत्मसमर्पण तथा मानव

सेवा कर ईश्वर अर्थात् ईसा मसीह के आशीर्वाद से इस अशुभ तत्व से मुक्त हो सकता है।

शैलोपदेश :– यह ईसामसीह द्धारा ईसाई धर्म के प्रमुख उपदेशों का संग्रह है। इन शैलोपदेश को ईसाई अनुयायी श्रद्धा से ग्रहण करते है। ये है –

1. जिनके अन्दरदीन भाव उत्पन्न हो गया है,वे धन्य है क्योंकि ईश्व का साम्राज्य उन्हीं को प्राप्त होगा।
2. विजयी पुरूष धन्य हैं क्योंकि वे पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर लेगे।
3. दयालु पुरूष धन्य है क्योंकि वे ही ईश्वर की दया प्राप्त कर सकेगे।
4. जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, वे धन्य है क्योकि ईश्वर का साक्षात्कार उन्हें होगा।
5. शान्ति को प्रचारक धन्य हैं क्योंकि वे भगवान के पुत्र कहे जायेगे।

ईसाई धर्म ने अहिंसा, क्षमाशीलता,शुद्धता,प्रेम,निन्दात्याग आदि पर बल दिया है। शैलोपदेश की पंक्तियां है – '' तुम सुन चुके हो–कहा गया है कि आंख के बदले आंख और दांत के बदले दांत तोड़ना नीति संगत है। परन्तु मेरा मानना है कि बुरे का बुराई से सामना मत करो। यदि कोई तुम्हारेदायें गाल पर थप्पड़ मारे तो उसकी ओर बाया गाल भी फेर दो और उसी प्रकार कोई तुम पर मुकदमा दायर करके तुम्हारा कोट ले ले तो उसे अपना लबादा भी दे दो।'' इस प्रकार अनेक पंक्तियों सत्व गुणों की प्रेरणा से भरी हुई है।

ईसाई धर्म के सार स्वरूप प्रार्थना के समय बोले जाने वाले कथन है – " Hear O Israel,the lord is your God. The lord is one, and thou shact love the lord thy God out of all thy Heart, and out of all thy Soul and out of all thine understanding and out of all they strength this is the first command and the second is." "thou shalt love thy neighbor as thy self greater then this there is no other command". प्रथम आदेश 'Shema और दूसरा Leviticù है।

ईसाई धर्म में कहा है कि परम पिता सब देखता है इसलिए श्रेष्ठ कर्मो को करो। ''बिना मेरे द्धारा कोई भी पिता के पास नहीं पहुंच सकता। मानव का उद्देश्य वैयाक्तिक अमरता है। जीव अर्थात् मानव ईश्वर अर्थात् पिता में एकाकार नहीं हो सकता, वह ईश्वरत्व को प्राप्त नहीं कर सकता। उसकी अपनी सत्ता है।

सिख धर्म

सिख धर्म के संस्थापक गुरूनानक थे। यह धर्म गुरूनानक की शिक्षाओं पर आधारित है। सिख धर्म का विकास हिन्दु धर्म से हुआ है। सिख धर्म के धर्मग्रन्थ का नाम 'ग्रन्थ साहब' है। इसमें धर्म गुरूओं की वाणीयां संग्रहित है। यह ग्रन्थ सिख अनुयायिओं के लिए ईश्वर के समान है। जो व्यक्ति सिख धर्म को अड्गीकृत करता है उसे पांच वस्तुऐं – 1. केश 2. कंघी 3. कृपाण 4. कडा 5. कच्छा रखनी जरूरी है।

ईश्वर विषयक विचार –सिख धर्म एक ही ईश्वर की सत्ता मानता है इसलिए एकेश्वरवादी है। गुरूनानक साहब ने लिखा है '' ईश्वर सिर्फ एक है। जिसका नाम सत्य है, वह स्रष्टा, भय और शत्रु भावना से शून्य है। वह अमर,अजन्मा,महान और दयालु है।'' ईश्वर सगुण और निर्गुण दोनो है। ईश्वर सृष्टि के कण – कण में व्याप्त है विश्व की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर अन्तर्भूत है। यद्यपि ईश्वर एक है किन्तु उसके रूप अनेक है। सिखों के धार्मिक ग्रन्थ में 6 गुरूओं सहित 30 भगतों की वाणी है। सिखों का धार्मिक स्थान गुरूद्धारा है। गुरूनानक जी ने भारतीय समाज में व्याप्त रूढियों और पाखण्डों से समाज को मुक्त किया। उन्होंने प्रेम सेवा परिश्रम परोपकार और भाईचारे की दृढ़नींव पर सिख धर्म की स्थापना की । इन्होने सभी धर्मोके प्रति समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए सभी धर्मो की अच्छाइयों को सिख धर्म में समाहित किया।

पारसी धर्म

पारसी धर्म –पारसी धर्म के प्रवर्तक जरथुश्त्र है। जरथुस्त्र 'जस्त'और 'उश्त्र' जरत का अर्थ है सुवर्ण तथा उस्त्र का अर्थ प्रभा मण्डित। जरथुस्त्र का अर्थ है सुनहली प्रभा से मण्डित। पारसी धर्म शुभ और अशुभ के संघर्ष का केन्द्र बिन्दु है। पारसी धर्म का मूल आधार अवेस्ता है इसकी भाषा जेन्द है। अवेस्ता के पांच भाग है –

1. यस्न (यज्ञ) –इसमें जरथुश्त्र के निजी वचन तथा उपदेश संग्रहीत है। इसे गाथा अथवा मन्त्र कहा गया है। इसमें यज्ञ तथा पूजा विधान का संकलन है।
2. वेन्दिदाद –इसमें शत्रु संहार सम्बन्धी विधान है।
3. विस्पेरद – यह पारसी कर्मकण्ड का संकलन है। देवताओं की आराधना के समय इसके विधानों का उल्लेख है।
4. यश्त –पूजा प्रार्थना।
5. खोर्द अवेस्ता – यज्ञों की स्तुति।

पारसी धर्म में नवजोत सुद्रेह और कुस्ति धर्म की पर्यायरणीय चेतना को मूर्त रूप देने। ये पृथ्वी के चतुर्थाशों को आहुतियों से लेकर विशद यस्ना समारोह तक मनुष्य और ब्रह्माण्ड के बीच अन्तर्सम्बन्ध के सम्पूर्णतावादी दृष्टिकोण को प्रदर्शित करते है। सबसे महत्वपूर्ण समारोह नवजोत (धर्म में शिक्षा)है। नवजोत समारोह में बच्चे को पवित्र कमीज 'सुद्रेह' और पवित्र करधनी 'कुस्ति' पहनाये जाते है। कमीज को वोह मानिक वस्त्र अर्थात् अच्छे पन का वस्त्र कहा जाता है। कुस्ति को विशेष प्रार्थना के समय कमर से बांधते है।

ईश्वर सम्बन्धी विचार :–

पारसी धर्म एकेश्वरवाद तथा द्धेतवाद का अनूठा उदाहरण है। पारसी के ईश्वर का नाम अहुरमजदा हैं स्पेनतामेन्यु अहुरमजदा में निवास करता है। ये ही विश्व के नैतिक व्यवस्थापक है। यह ईश्वर का एक अंग है। लेकिन फिर भी ईश्वर से निम्न है। अहुरमजदा ही अपनी सृजनात्मक शक्ति से सृष्टि का सृजन करता है।

ताओ धर्म :–

ताओ धर्म चीन का धर्म है। इस धर्म के संस्थापक लाओत्सी है। ताओ धर्म में आध्यात्मवाद, रहस्यवाद, तथा जादू तीनो का समावेश है। कुछ विचारक इसे धर्म की श्रेणी में न रखकर दर्शन की श्रेणी में रखते हे। ताओ धर्म का मूल उद्देश्य चरम तत्व के स्वरूप का विश्लेषण करना है। ताओ धर्म के संस्थापक के विषय में मतभेद है कुछ इनका जन्म 604 वर्ष पूर्व कुछ छठी शताब्दी पूर्व मानते है। ताओ धर्म का केन्द्र बिन्दु ताओ है। यह सम्पूर्ण ताओ धर्म का आधार है। '' ताओ स्वर्ग का आधार है और पृथ्वी में व्याप्त है। इसकी कोई परिधि नहीं है। यह सीमा से रहित है। इसकी ऊचाई को नहीं मापा जा सकता है। इसकी गहराई को नहीं आँका जा सकता है। यह सम्पूर्ण विश्व को अपने अधीन रखता है। यह अगोचर है परन्तु सभी गोचर पदार्थ आकाश और पृथ्वी का जनक है। यह सभी विषयों में अन्तर्भूत है। यह आकारहीन होते हुए भी सभी वस्तुओं को कार्यान्वित करता है। इस प्रकार ताओ एक पूर्ण और अगोचर सत्ता है। यह अवर्णनीय, इन्द्रियातीत, अपरिभाषेय है। ताओ से ही सभी वस्तुओं की उत्पत्ति व विकास हुआ है तथा अन्त में समस्त वस्तुऐं इसी में लीन हो जाती है। इस प्रकार यह ताओ ही सृष्टा, पालक एवं रक्षक है। ताओ का ज्ञान रहस्यात्मक है।

लाओत्सी ने अपनी पुस्तक "Tao Teh King में ताओ के तीन अर्थ बताये है –

1. परम तत्व प्राप्ति का मार्ग ताओ है। ताओ का ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण से नहीं होता है। यह अनिर्वचनीय, विश्वातीत है। चरम तत्व है ताओ सभी वस्तु के मूल में है, सभी सत्ताओं का मूलाधार है।
2. विश्व की मूल शक्ति ताओ है। यह प्रकृति की संचालन शक्ति, समस्त वस्तुओं का नियन्ता है। ताओ आत्मास्वरूप है।
3. मानव और प्रकृति के बीच ताओ ही वह मार्ग है जिससे मनुष्य दोनो के बीच सांमजस्य बना सकता है।

ताओ धर्म का मानना है कि ध्यान और प्राणायाम के द्वारा मनुष्य दया, करूणा, पवित्रता, संतोष के मार्ग पर चलकर ताओ को प्राप्त कर सकता है। इन्द्रियों को निग्रह के द्वारा विषयों से विमुख कर ताओ पर केन्द्रीयभूत किया जा सकता है। ताओ धर्म में साधुत्व की राह दिखायी गयी है। ताओवाद पुनर्जन्म तथा आत्मा की अमरता को मानता है।

इस प्रकार समस्त धर्मों में मानव जीवन के लिए नियमों, आदर्शो, ईश्वर की सत्ता का विवेचन कर लौकिक सुख तथा परम् आध्यात्मिक गति की राह प्रशस्त की है। यह किसी एक धर्म का नहीं अपितु विश्व के समस्त धर्मों का सार है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. तत्वार्थधिगम सूत्र 1.2.3
2. The Dynamics of faith (P.138) Prof. Khagendra Nath Mitra
3. डॉ0 राधाकृष्णन–ईस्टर्न रीलिजन एण्ड वेस्टर्न विचार
4. गीता–2.12
5. गीता– 2.14
6. आर. सी. जहनेर– हिन्दूज्मि
7. डॉ0 भगवान दास
8. डॉ0 राधाकृष्णन– धर्म और समाज
9. श्वेताश्वतर उपनिषद्–3/11,4/10,4/11,5/4
10. आर. जी. भण्डारकर – वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत
11. एस. आर. गोयल – ए रिलीजन हिस्ट्री ऑफ एनसियन्ट इण्डिया
12. उपाध्याय बलदेव – भागवत सम्प्रदाय
13. सुवीरा जायसवाल – द ओरिजिन एण्ड
14. श्रीमद्भागवद्गीता 11/44
15. डॉ0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा– धर्म दर्शन की रूपरेखा